प्राचीन भारत में षोडश संस्कारों का वैज्ञानिक महत्व

Swati Srivastava

Department of A.I.H.C., Banaras Hindu University, Varanasi-5

Abstract

The ancient civilization of India has its own glory in the field of science and culture. Vedic sages have woven our life with the thread of various ceremonies. They have trained the mankind for pleasant, enjoyable and healthy mind. For this they have introduced sixteen ceremonies. Each of the sixteen ceremonies has specific psychological and scientific reasons. These were the backbone of Indian culture. India is the only country in the world, which is full of spiritualism.

These ceremonies start before the birth of a child and cotinue to the life after death. These ceremonies have an everlasting positive effect on the inner sense of the manking. The above, mentioned sixteen ceremonies are follows- garbhadhana. Pumsavana, simantonnayana, jatakarma, namkarana, niskramana, annaprasana. Chudakarma, karnachedana, Vidyarambha, upanayana. Yedarambha, keshanta, samabartana, Vivah and antiyosti.

These ceremonies are performed with specific powerful Veda Mantras which are scientifically constructed. Pronounciating such mantras jointly would create a flow of cosmic energy that are required for such ceremonies. Thus the vedic mntras are able to make the lives of the people stable, healthy, pleasant and cultured.

In this paper, we will try to reveal the scientfic essence of the sixteen cermonies in ancient India.

हमारी प्राचीन महत्ता एवं गौरव गरिमा को गगनचुम्बी बनाने में जिन अनेक सत्यवृत्तियों को श्रेय मिला था, उनमें एक बहुत बड़ा कारण यहाँ की संस्कार पद्धति को भी माना जा सकता है। प्राचीन काल से हिन्दू समाज में मनुष्य के व्यक्तित्व के उत्कर्ष के निमित्त संस्कारों का संयोजन किया गया था। जीवन के आरम्भ से लेकर अन्त तक इन संस्कारों की नियोजना इसलिए की गयी कि मनुष्य का वैयक्तिक और सामाजिक विकास हो सके तथा उसका दैहिक और भौतिक जीवन सुव्यवस्थित ढंग से उन्नत हो सके। मानव जाति की सुख शान्ति एवं प्रगति की सर्वोपरि आवश्यकता का महत्व हमारे तत्वदर्शी पूर्वज, ऋषि-महर्षि भली प्रकार से समझते थे, अत एव उन्होंने मनुष्य जीवन को जन्म के पूर्व से लेकर मरणोत्तर जीवन तक संस्कारों की विज्ञान सम्मत प्रक्रिया के साथ इस प्रकार जोड़ दिया कि मानव की जीवन यात्रा में निरन्तर परिशोधन प्रगति के अलावा कुछ और अनिष्ट न होने पाये। प्रायः यह माना जाता है कि मनुष्य का जीवन अनेक बाधाओं और विघ्नों के कारण सुव्यवस्थति ढंग से नहीं चल पाता। उसे विभिन्न प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं। इनके निराकरण का ठोस उपाय चिकित्सा पद्धति द्वारा भी नहीं खोजा जा सका हैं। इस महत्वपूर्ण समस्या पर ऋषियों ने अत्यधिक गम्भीरतापूर्वक विचार किया था। वह उपाय भी खोज निकाला था, जिसके आधार पर मानवीय मन को एक विशिष्ट वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर निर्मल, सन्तुलित एवं सुसंस्कृत बनाया जा सके। इस प्रक्रिया का नाम है-संस्कार पद्धति। संस्कार शब्द-संपूवर्क 'कृ' धातु में 'घ' प्रत्यय के योग से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ शुद्धता अथवा पवित्रता से है।[1] संस्कार का आधार धर्म है, जिसके माध्यम से मनुष्य अपने जीवन को उन्नत, परिष्कृत और सुसंस्कृत बनाता है। प्राचीन काल से आज तक अनेक परिवर्तनों के बाद भी हिन्दू समाज में संस्कारों का महत्वपूर्ण स्थान है।

हिन्दू समाज में संस्कारों का प्रचलन वैदिक युग से ही रहा है। किन्तु इनका विवरण वैदिक साहित्य में नहीं मिलता। सूत्रों और स्मृतियों में इनके विषय में विस्तार से लिखा गया है।

मनुष्य जीवन में होने वाले संस्कारों की संख्या के विषय पर धर्मशास्त्रकारों में मतभेद है। गौतम ने इन संस्कारों की संख्या चालीस दी है। वैखानस ने इनकी संख्या अट्ठारह बतलायी है। पाणिनि गृह्यसूत्र में तेरह संस्कार का विधान किया गया है। किन्तु प्रायः सभी धर्मशास्त्रकार संस्कारों की संख्या मुख्य रूप से सोलह मानते हैं। ये संस्कार हैं--

Vijnana Bharati

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोनयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकरण, कर्णवेध, विद्यारम्भ, उपनयन, वेदारम्भ, केशान्त, समावर्तन, विवाह और अन्त्येष्टि।

वस्तुतः संस्कारों की संख्या उनकी मान्यता पर निर्भर थी। हिन्दू समाज में जितने संस्कार स्वीकार किये गये तथा समयानुसार जिनका पालन किया गया, वे ही अधिक प्रचलित हुए।

प्रत्येक संस्कार विशिष्ट वेदमंत्रों के साथ यज्ञ प्रक्रिया के साथ सम्पन्न करने का त्रिधान किया गया। प्रत्येक विशिष्ट संस्कार में उच्चरित किये जाने वाले विशिष्ट वेद मंत्रों की अपनी विशिष्ट क्षमता होती है। उनका निर्माण ऐसी वैज्ञानिक पद्धति से हुआ है कि विधिवित् सस्वर उच्चारण किये जाने पर वे आकाश तत्व में विशिष्ट विद्युत प्रवाह तरंगित करते हैं। उनका प्रयोजन पर वैसा ही प्रभाव पड़ता है जैसा कि मन्त्र का उद्देश्य है। यज्ञ उपचार के साथ इन मंत्रों की शक्ति और भी बढ़ जाती है। जिस प्रकार बिजली, भाप, अणु रसायन आदि का अपना विज्ञान है उसी प्रकार मन्त्र शास्त्र एवं यज्ञादि कर्मकाण्डों का भी अपना विज्ञान है। इस प्रकार संस्कार पद्धति में वेद मंत्रों के सस्वर उच्चारण से उत्पन्न होने वाली ध्वनि तरंगें यज्ञीय उष्मा के साथ सम्बद्ध होकर अलौकिक वातावरण प्रस्तुत करती है। जो व्यक्ति के गुण, स्वभाव व कर्म पर प्रभाव डालती हैं।

इस प्रकार संस्कारों की प्रक्रिया एक ऐसी आध्यात्मिक उपचार पद्धति है, जिसमें व्यक्तित्व के विकास में आश्चर्यजनक सहायता मिलती है। प्रत्येक संस्कार प्रक्रिया के पीछे एक विशिष्ट वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक कारण निहित है, जिसके द्वारा मनुष्य की अन्तः चेतना पर विशेष प्रभाव पड़ता है तथा उसका सुसंस्कारी बनना सरल हो जाता है।

हिन्दू समाज में किया जाने वाला प्रथम संस्कार है "गर्भाधान संस्कार"। इस संस्कार का प्रचलन वैदिक काल से हुआ।[२] इस संस्कार के माध्यम से विवाहोपरान्त पुरुष स्त्री में अपना बीज स्थापित करता और संतान की कामना करता है।[३] दूसरे अर्थों में स्त्री का गर्भवती होना ही गर्भाधान है। इस संस्कार को करने के प्रयोजन में मनोवैज्ञानिक कारण अर्न्तनिहित है। इस संस्कार में आर्य पुरुष अपनी स्त्री के समीप सुसंतति रूपी एक निश्चित उद्देश्य के साथ रात्रि में ऐसी धार्मिक पवित्रता लेकर जाते थे, जो भावी संतान को निर्मल बनाती थी। स्त्री पुरुष दोनों अपने मन में ये विचार रखते थे कि आने वाली जीवात्मा, परमात्मा का स्वरूप और प्रतिनिधि है। इस प्रकार के विचार के साथ यह संस्कार सम्पन्न किया जाता था। इस प्रकार के शुद्ध विचार का प्रभाव, उनकी संतान के मन पर भी पड़ता, जो भावी संतान को श्रेष्ठ और निर्मल मन वाला बनाती थी। इस प्रकार यह संस्कार मानसिक रूप से निर्मल और श्रेष्ठ संतान प्राप्त करने के लिए किया जाता था।

द्वितीय संस्कार है "पुंसवन संस्कार"। यह संस्कार गर्भस्थ शिशु के समुचित विकास के लिए गर्भिणी का सम्पन्न किया जाता था। गर्भ के तीसरे माह यह संस्कार किया जाता था।[४] प्रायः तीसरे माह में आकार और संस्कार दोनों अपना स्वरूप बनाने लगते हैं। शौनक ऋषि के अनुसार इस संस्कार में औषधि सेवन और यज्ञकर्म से गर्भ पवित्र और शुद्ध हो जाता है। पुंसवन संस्कार में गर्भपात के निरोध तथा श्रेष्ठ संतति के जन्म के उद्देश्य से गर्भिणी स्त्री के दाहिने नासिका छिद्र में वटवृक्ष की छाल का रस छोड़ा जाता था। यह सारी प्रक्रिया ऋषियों के आर्युवेदिक अनुभव पर आधारित थी। इस प्रकार यह संस्कार गर्भपात के निषेध तथा स्वस्थ संतान प्राप्ति के उद्देश्य से किये जाने का विधान था।

तीसरा संस्कार है, "सीमंतोनयन संस्कार" हिन्दू संस्कारों के अनुसार यह संस्कार गर्भ के चौथे महीने में आयोजित किया जाता था। इस संस्कार में गर्भिणी के केशों को ऊपर (उन्नयन) उठाया जाता था[५] और मंत्रोच्चारण के साथ होम किया जाता था। इस संस्कार में उच्चरित किये जाने वाले मंत्रों में गर्भकाल में गर्भवती स्त्री के रहन-सहन, आहार-विहार सम्बन्धी महत्वपूर्ण निर्देश मौजूद हैं। इस प्रकार इस संस्कार को करने के पीछे मनोवैज्ञानिक कारण अन्तर्निहित था।

चौथा संस्कार है, "जातकर्म संस्कार"। मनु[६] के अनुसार पुत्र जन्म के अनन्तर नाभिच्छेदन से पहले यह संस्कार सम्पन्न किया जाता था। इस संस्कार में मन्त्रोच्चारण के साथ नवोत्पन्न बच्चे को स्वर्ण शलाका से मधु तथा घी का प्राशन कराया जाता था।[७]

नाल काटने के समय संक्रमण के निषेध तथा रोगप्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के लिए यह संस्कार किया जाता था।

पाचवाँ संस्कार है, "नामकरण संस्कार" हिन्दू समाज में नाम प्रदान करना भी एक संस्कार माना गया। परिवार में नाम का आत्यधिक महत्व रहा है, जो शुभ कर्मों और भाग्य का आधार माना गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों[८], गृह्यसूत्रों[९], स्मृतियों आदि में

Vinaya Bharati

नामकरण संस्कार का सविस्तार वर्णन है। शिशु के नाम का चुनाव धार्मिक क्रियाओं के साथ निश्चित तिथि को सम्पन्न किया जाता था। इस संस्कार को सम्पन्न करने के पीछे एक मनोवैज्ञानिक उद्देश्य था, इस संस्कार के अवसर पर बालक के शारीरिक पालन-पोषण की ही नहीं बल्कि मानसिक विकास की विधि-व्यवस्था भी समझायी जाती है, ताकि माता-पिता ही नहीं परिवार के सभी सदस्य इस नवीन आगन्तुक को सुसंस्कृत बनाने में अपनी-अपनी जिम्मेदारियाँ समझें और उनका पालन करें।

छठवाँ संस्कार है "निष्क्रमण संस्कार"। जन्म से एक निश्चित अवधि के बाद जब संतान को पहली बार घर के बारह निकाला जाता था, तब वह निष्क्रमण कहा जाता था। प्राय: जन्म के बारहवें दिन से चौथे मास तक यह संस्कार सम्पन्न किया जाता था। इस संस्कार में एक निश्चित तिथि को घर के बाहर प्राकृतिक वातावरण में किसी स्थान को जल और गोबर से पवित्र किया जाता था। जहाँ से सूर्य दर्शन सम्भव था। शिशु को स्नान कराकर नवीन वस्त्र धारण कराकर, यज्ञ के सम्मुख लाकर वेद मंत्रों का पाठ होता था। तत्पश्चात् शिशु को माँ की गोद में देकर सर्वप्रथम उसे सूर्य-दर्शन कराया जाता था।[१०] वस्तुत: इस संस्कार के मूल में यह विचार निहित था कि एक निश्चित और निर्धारित तिथि पर शिशु को सर्वप्रथम उन्मुक्त वातावरण और प्राकृतिक जीवन में लाकर तथा सूर्य और चन्द्र जैसे नक्षत्रों के प्रकाश में लाकर उसके स्वछन्द विकास पर बल दिया जाय।

सातवाँ संस्कार है, "अन्नप्राशन संस्कार"। इस संस्कार द्वारा सर्वप्रथम बच्चे को अन्न ग्रहण कराया जाता था।[११] यह संस्कार प्राय: छठे मास में किया जाता था। इस संस्कार में मधु, घी, दही, पका चावल आदि शिशु के मुख में स्पर्श कराया जाता था। इस संस्कार में परिवार के वयोवृद्ध सदस्यों द्वारा माता-पिताको यह सिखाया जाता था कि बालक की स्वास्थ्य रक्षा के लिये किस प्रकार, कितना और क्या भोजन ग्रहण कराया जाय तथा मानसिक स्वास्थता की दृष्टि से वह अन्न कितना सात्विक एवं संस्कारिक हो। अन्न से शरीर ही नहीं मन भी बनता है, इसलिए बच्चे को शरीर एवं मन की दृष्टि से समर्थ बनाने के लिए उसके आहार सम्बन्धी शिक्षा इस समय दी जाती थी।

आठवाँ संस्कार है "चूड़ाकरण संस्कार"। जब शिशु के बाल सर्वप्रथम काटने का आयोजन किया जाता था तब इसे चूडाकरण या चूडाकर्म संस्कार कहते थे।[१२] इसमें शिखा को छोड़कर गर्भकाल के सभी बाल तथा नख कटवा दिये जाते थे। इस संस्कार का उद्देश्य शरीर की स्वच्छता और पवित्रता से बालक का परिचय कराना था। इस संस्कार का महत्वपूर्ण अंग था शिखा की स्थापना। शिखा वाला स्थान मस्तिष्क का हृदय कहा गया है, ब्रह्मरन्ध्र यहीं पर होता है तथा वैज्ञानिक दृष्टि से द्विदलीय आज्ञा चक्र भी यहीं होता है। पीनीयल ग्रन्थि जो बालक को किशोरावस्था तक ले जाती है तथा हारमोन्स द्वारा हर आयु में व्यक्ति के चिन्तन का क्रम निर्धारित करती है, यहीं होती है। ऐसे मर्म स्थान को सुरक्षित रखने के लिए बालों के गुच्छे के रूप में शिखा रखी जाती थी। इस तरह चूड़ाकरण संस्कार में शिखा स्थापन हर दृष्टि से एक विज्ञान सम्मत संस्कार है।

नौवां संस्कार है कर्णवेध या कर्णछेदन संस्कार। यह संस्कार शिशु के शोभन और अलंकरण के निमित्त किया जाने वाला धार्मिक संस्कार था जो प्राय: जन्म के सातवें माह में किया जाता था। इस संस्कार का एक वैज्ञानिक कारण रोगों से बचाव माना जा सकता है। वस्तुत: आधुनिक एक्युपंक्चर पद्धति के अनुरूप यह एक सशक्त विधान था।

दसवाँ संस्कार है "विद्यारम्भ संस्कार"। संतान की अवस्था जब पाँच वर्ष हो जाती थी तब उसे शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की जाती थी।[१३] शुभ मुहूर्त में शिक्षक द्वारा पट्टी पर ओम् और स्वस्तिक के साथ वर्णमाला लिखकर बालक को अक्षरारम्भ कराया जाता था। वस्तुत: यह संस्कार बुद्धि और ज्ञान से सम्बद्ध था। इसमें शिक्षा मात्र शिक्षा न रहकर विद्या बने, गणेश व सरस्वती के पूजन के माध्यम से वह सुसंस्कार देने वाली विद्या तथा ज्ञानवर्धन करने वाली कला उल्लास की सरस्वती को नमन कर उनसे प्रेरणा ग्रहण करें, यह मूल भावना निहित थी।

ग्यारहवाँ संस्कार था "उपनयन संस्कार"। उपनयन का अभिप्राय स्वाध्याय अथवा वेद से है, जब बालक, आचार्य के निकट अध्ययनार्थ जाता था। इस संस्कार का सम्बन्ध बौद्धिक उत्कर्ष से है। यह संस्कार इस बात का प्रमाण था कि अनियमित और अनुत्तरदायी जीवन समाप्त होकर नियमित, गम्भीर और अनुशासित जीवन का प्रारम्भ हुआ।[१४] इस संस्कार में स्नान के बाद बालक को कौपीन (लंगोटी) धारण करने के लिए दिया जाता था। इसके बाद आचार्य उसके कटि के चारों ओर मेखला बाँधता था तथा उसे उपवीत धारण करने के लिये देता था।[१५] ये सभी क्रियायें धर्मशास्त्रीय आधार पर मंत्रों के साथ सम्पन्न की जाती थी। इस प्रकार इस संस्कार के साथ ही बालक के नियमित, गम्भीर और अनुशासित जीवन का प्रारम्भ होता था

Vijnana Bharati

जिससे कि वह श्रेष्ठ और जिम्मेदार नागरिक बने।

बारहवाँ संस्कार था "वेदारम्भ संस्कार"। गुरु के सान्निध्य में पहुँचकर शिष्य का वेदाध्ययन प्रारम्भ करना भी एक संस्कार माना जाता था। जिससे उसका बौद्धिक और आध्यात्मिक उत्कर्ष होता था।

तेरहवाँ संस्कार था "केशान्त या गोदान संस्कार" विद्यार्थी के सोलहवें वर्ष प्रायः यह संस्कार किया जाता था, जब उसकी दाढ़ी का पहली बार क्षौर कर्म होता था।[१६] इस संस्कार के अवसर पर युवा विद्यार्थी को ब्रह्मचर्य और सदाचरण का स्मरण दिलाया जाता था। इस अवसर पर आचार्य के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने के लिए गोदान का भी विधान था।

चौदहवाँ संस्कार था "समावर्तन संस्कार"। शिक्षा समाप्ति के बाद जब ब्रह्मचारी अपने गृह की ओर प्रस्थान करता था, तब यह संस्कार सम्पादित किया जाता था। इस संस्कार में यज्ञ होम के पश्चात् आचार्य नवस्नातक के लिए उज्ज्वल भविष्य की कामना करता था।

पन्द्रहवाँ संस्कार था "विवाह संस्कार"। विवाह संस्कार समस्त संस्कारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण और गौरवशाली माना गया है। व्यक्ति का गृहस्थ आश्रम में प्रवेश विवाह संस्कार से ही होता है। इस संस्कार के साथ ही व्यक्ति का परिवार और समाज के प्रति नये दायित्व का प्रारम्भ होता है। विवाह के उद्देश्यों में प्रधान उद्देश्य वंश वृद्धि था।

सोलहवाँ संस्कार था "अन्त्येष्टि संस्कार"। मनुष्य के मरने पर जब उसकी दाह-क्रिया की जाती थी, तब उसे अन्त्येष्टि संस्कार कहा जाता था, जो उसके जीवन का अन्तिम संस्कार होता था। मनुष्य के शरीर में से प्राण निकल जाने पर उसका क्या किया जाय? इस प्रश्न के समाधान स्वरूप हमारे महान् ऋषि इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि नर तनु का प्रयोजन किसके लिए उत्सर्ग होने से सिद्ध होते है इसका बृहत प्रदर्शन करते हुए मृत शरीर की अन्त्येष्टि की जाय। इस प्रकार स्वजनों के शोक को यज्ञायोजन की व्यवस्था में मोड़कर संस्कार सम्बन्धी प्रेरणाओं द्वारा जीवन दर्शन को समझाना ही इस संस्कार का मूल उद्देश्य है।

इन षोडश संस्कारों के सृजन में ऋषियों का मूल प्रयोजन था मानवीय चेतना पर सूक्ष्म विधि से उन आदर्शों की प्रतिष्ठापना करना जिनके द्वारा व्यक्तित्व परिष्कृत एवं श्रेष्ठ बनता है यह परम्परा पूर्णतः वैज्ञानिक थी। इसके साथ ही ऋषियों की इस परम्परा में मनोवैज्ञानिक प्रशिक्षण का सशक्त आधार भी मौजूद है।

इस प्रकार संस्कार पद्धति को एक प्रकार से मनोविकारों के निराकरण की विज्ञान सम्मत आध्यात्मिक चिकित्सा प्रणाली भी कहा जा सकता है। यह विज्ञान अद्भुत रूप से आध्यात्मिक लाभों और सामाजिक सत्परिणामों एवं मनोवैज्ञानिक तथ्यों से भरापूरा है। किसी और सभ्यता या संस्कृति में इतना गूढ़ समावेश आध्यात्मिकता का नहीं देखा जाता जिससे कि गुण-सूत्र, जीन्स तक प्रभावित होते हैं।

सन्दर्भ :

१. डा. जयशंकर मिश्र -- प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ. २८२

२. बौ. गृ. सू. १४, ६.१, का.गृ.सू. ३०.८, याज्ञ.गृ.सू. १.११

३. पा.गृ.सू. १

४. आ.गृ.सू. १.१३, २-७

५. पा.गृ.सू., १.१४.२, बौ.गृ.सू. १.९.१, वी.मि.सं. १, पृ.१७२

६. मनु. २.२९

७. आश्व.गृ.सू. १.१५.१-४, ब्रह्मपु. वी.मि.१, पृ.१४२

८. श.ब्रा. ६.१.३९, तै.सं. ६.१.१३

९. आ.गृ.सू. १५.८.११, आश्व.गृ.सू. १.१५.४.१०

१०. डा. जयशंकर मिश्र -- प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ. २८४

११. शां.गृ.सू. १,२७, आ.ध.सू. १.१६.१

१२. महाभाष्य २, पृ.२६२, संस्कार प्रकाश, पृ.२९५

१३. संस्कार प्रकाश, २६०, संस्कार रत्नमाला, पृ.८७३, संस्कार कौस्तुभ, पृ.३७०

१४. राजबली पाण्डेय, हिन्दू संस्कार, पृ.९९-११०

१५. वी.मि. १, पृ. ४१५

१६. आ.गृ.सू. १.१८

Vijana Bharati